Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

स्वतंत्र भारत में आतंकवाद एवं उग्रवाद की समस्याएँ : एक अध्ययन

विशाल कुमार
एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

Article Info
Volume 4 Issue 6
Page Number: 06-11

Publication Issue :
November-December-2021

Article History
Accepted : 05 Nov 2021
Published : 10 Nov 2021

नक्सलवादी आंदोलन भारत के इतिहास की एक प्रमुख घटना रही है। बिहार जैसे राज्य में तो वह एकमात्र सामाजिक आंदोलन है जिसने गाँव के गरीबों एवं वंचितों की समस्याओं को उठाया है। यह पहला ऐसा आंदोलन है जिसमें गरीब किसानों के साथ–साथ भूमिहीन खेतिहर मजदूरों ने हिस्सा लिया और बहुत हद तक उसे नेतृत्व प्रदान किया। 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के एक गाँव नक्सलबाड़ी से शुरू होने के कारण इस आंदोलन को नक्सलवाद कहा जाने लगा। भारत में नक्सलवादी आंदोलन के पीछे की प्रेरणा को समझने के लिए हमें आधी शताब्दी और पीछे जाना होगा। 1949 में चीन में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना के बाद ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों को प्रमुखता देने वाला क्रांति का एक दूसरा प्रतिमान बहुत से लोगों को ज्यादा अपील करने लगा। चीन की क्रांति के सफलता के काल में ही हैदराबाद के तेलंगाना क्षेत्र में किसानों का सशस्त्र आंदोलन शुरू हो गया था और कुछ चीनी प्रतिमान पर ही वहाँ से बड़े भू–स्वामियों को खदेड़ दिया गया था। इस आंदोलन को फौज के सहारे दबा दिया गया। लेकिन किसान विद्रोह की संभावना आंध्र के इस भू–भाग से कभी ओझल नहीं हुई। तेलंगाना के माओवादी संगठन में उस भावना की निरंतरता देखी जा सकती है। इधर चीन की आर्थिक नीति को लेकर 1960 में सोवियत संघ से विवाद इतना गहरा हो गया कि इसका सीधा असर दुनिया भर के कम्युनिस्ट आंदोलन पर पड़ा और भारत में रूस समर्थक और चीन समर्थक घड़ों में कम्युनिस्ट पार्टी विभाजित होने लगी।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

पहला गंभीर विभाजन 11 अप्रैल 1964 को हुआ जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) से अलग होकर एक नई पार्टी बनी। उसका नाम था। सीपीआई–मार्क्सवादी। नई पार्टी की जरूरत इसलिए महसूस की गई, क्योंकि असंतुष्ट सदस्यों की निगाह में सीपीआई का नेहरू सरकार के प्रति दृष्टिकोण हमदर्दी का था जो संसदीय पद्धति की जरूरत सिर्फ टेक्टिकल है– काम चलाने भर के लिए। उससे आधारभूत क्रांति नहीं हो पायेगी। उस वक्त शायद सीपीआई–मार्क्सवादी के नेतृत्व को यह यकीन नहीं था कि तीन वर्ष बाद ही उसे सरकार में शामिल होना पड़ेगा।

1967 में देश के कई भागों में गैर–कांग्रेसवाद के लहर के प्रभाव में पश्चिम बंगाल में भी गैर–कांग्रेसी सरकार बनी, जिसमें कांग्रेस से अलग हुए एक गुट के साथ सीपीआई और सीपीएम ने ढाँचे के भीतर किसी मूलभूत परिवर्तन की नीति नहीं थी। इसी स्थिति में सीपीएम के अपने ही असंतुष्टों ने उत्तरी बंगाल के नक्सलबाड़ी इलाके में किसानों का आंदोलन छेड़ दिया। यह आन्दोलन चीनी वैचारिक प्रयोग को भारत की जमीन पर उतारने का प्रथम गंभीर प्रयास था। इस आंदोलन को आरंभिक नेतृत्व मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य चारू मजुमदार, कानू, सान्याल, खोखन मजुमदार तथा जंगल संथाल ने प्रदान किया। इनके नेतृत्व में भूमिहीनों को भूस्वामियों/जोतदारों की जमीन पर कब्जा कर उनके सफाया के लिए प्रोत्साहित किया गया। सीपीएम के उन कार्यकर्ताओं में जो संवैधानिक राजनीति से क्षुब्ध थे उन्हें एक नई दिशा मिली। और मूलतः बंगाल में लेकिन कुछ हद तक सारे भारत के नौजवानों में सांस्कृतिक क्रांति के तर्ज पर कुछ कर डालने का उत्साह पैदा हुआ। 'चीन के राष्ट्रपति हमारे राष्ट्रपति' जैसे नारे इन युवाजनों में काफी लोकप्रिय हो गये।

भारत में बिहार भी उपर्युक्त घटना से अछूता नहीं रहा। यहाँ भी सामंती प्रवृत्ति के लोग इस कार्य में पीछे नहीं रहे। सामंतों का अत्याचार सर्वहारा वर्ग की महिलाओं एवं मजदूरों पर चरम सीमा पर था। इन सभी घटनाओं ने बिहार में नक्सली नेताओं को आने के लिए बाध्य कर दिया। बिहार में नक्सलवाद कब से फैला, इसके बारे में दो तरह की राय है। लिब्रेशन ग्रुप के लोग बिहार में नक्सलवाद की शुरूआत भोजपुर से मानते हैं। इसलिए वे नारा देते हैं–'नक्सलबाड़ी दू एकवारी'। एकवारी भोजपुर जिले का हिस्सा है। लेकिन यह सच नही है। बिहार में नक्सलवाद का आरंभ मुजफ्फरपुर के मुशहरी से हुआ।

सीपीएम के 600 कार्यकर्ताओं ने विद्रोह किया और वे सत्यनारायण सिंह के नेतृत्व में नक्सलवादी हो गये। उस वक्त सत्यनारायण सिंह सीपीएम की बिहार शाखा के जेनरल सेक्रेटरी थे। मुजफ्फरपुर में 1968 से किसान संग्राम समिति नामक संगठन काम कर रहा था, जिसके नेता राजकिशोर सिंह थे। इस समिति में नक्सली हावी थे। जमीन की पहली जब्ती गंगापुर में हुई। नरसिंहपुर का जमींदार बिजली सिंह अपने लठैतों के साथ लड़ने आया, पर लठैतों को

पीटकर भगा दिया गया। कहा जाता है कि इस संघर्ष में बिजली सिंह के हाथी का सूँड़ काट लिया गया था। किसानों ने अरहर की फसल काट ली। नक्सली नेता सत्यनारायण सिंह ने घोषणा की–''गंगापुर लड़ाकू किसान जनता का प्रतीक बन गया है।''

15 अगस्त, 1968 को किसानों ने जमींदारों की फसल लूट ली और इसी दिन मुशहरी प्रखण्ड में उन्होंने सशस्त्र प्रदर्शन किया। इसके बाद पुलिस की ओर से कार्रवाई शुरू हुई। कई फर्जी मुकदमें किये गये। आन्दोलनकारी भूमिगत हो गये। किसानों ने लगातार जमींदारों के घर पर आक्रमण किया। इस क्षेत्र के छह जमींदारों की उन्होंने हत्या कर दी। इस दरम्यान किसानों ने ऋण के कागजातों को जलाया, अन्न लूटा और फसलों पर कब्जा किया। 23 अगस्त को हरकेश गाँव में घंटों तक पुलिस से लड़कर किसानों ने आंदोलन दरभंगा, चम्पारण और दक्षिण मुंगेर में फैल गया। मुशहरी में कुल 18 लोग मारे गये। मरने वालों में दो महत्वपूर्ण नेता भी थे–राजकिशोर सिंह और कॅमरेड तसलीम। बढ़ते हुए नक्सलवाद से निपटने के लिए बिहार के मुख्यमंत्री दारोगा प्रसाद राय ने दरभंगा, मुंगेर, जमशेदपुर और मुजफ्फरपुर जिले के लिए विशेष पुलिस सेल गठन का फैसला किया। एक छोटे अंतराल में ही यहाँ के कृषि–क्षेत्र की अशांति ने दीर्घकालीन कृषि आंदोलन की संभावनाओं को सामने ला दिया। इन संभावनाओं को देखकर क्रांतिकारी कम्युनिस्ट इस किसान संघर्ष को उत्तर के श्री काकुलम मानने के लिए उत्साहित हो गए। हालांकि यह संघर्ष शुरू होने के पहले ही लड़खड़ा गया था फिर भी इसने बिहार में सशस्त्र संघर्ष के दरवाजे खोल दिए।

जयप्रकाश नारायण ने 'नक्सलवादी खतरा' को मिटाने के उद्देश्य से विकास कार्य शुरू करने के लिए मुसहरी को चुन लिया। उस समय उन्होंने कहा कि बंधुआ मजदूर की मजदूरी निर्धारित मजदूरी की आधी थी और ग्रामीण हिंसा की जमीन गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक–आर्थिक अन्याय के बदौलत तैयारा हुई। मुसहरी का संघर्ष एक राजनीतिक विचारधारा को लागू करने के क्रम में पैदा हुआ था, लेकिन राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों, जमींदार और शूदखोर कृषि क्षेत्र की अशांति पर दोष मढ़ने पर उतारू थे।

उल्लेखनीय है कि मुसहरी संघर्ष दो बुनियादी मुद्दों पर लड़ा गया थाः 'जमीन जोतने वालों की' के लिए और जातीय भेदभाव के खिलाफ। इस प्रकार यह संघर्ष आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ था। लेकिन इस प्रक्रिया में सामंती सत्ता को नष्ट करने और किसानों के प्राधिकार को स्थापित करने के मूल उद्देश्य की उपेक्षा हुई। यही उपेक्षा संघर्ष की सीमा रेखा बन गई। माओ ने सिखाया था कि जनता और पार्टी पर भरोसा रखो। लेकिन नेतृत्व की इस नीति से किसानों के खिलाफ पूर्वग्रह का संकेत मिला। इस हद

तक पूर्वाग्रह कि उसने उन्हें पिछड़ा और सिर्फ आर्थिक मुद्दों से सरोकार रखने वाला मान लिया।

गौरतलब है कि 1970 के दशक में नक्सलवादियों ने पुलिस के साथ कई जगहों पर जबर्दस्त संघर्ष किए। इसी समय यह भी साबित हुआ कि दमन के बल पर नक्सलवादियों को नहीं दबाया जा सकता क्योंकि इमर्जेन्सी के दौरान ही नक्सलवादियों ने सबसे ज्यादा सैनिक कार्रवाईयां की ओर सबसे ज्यादा वर्ग शत्रुओं का सफाया भी किया। लेकिन पुलिस के साथ संघर्ष में नक्सलवादियों की सैनिक शक्ति का भी काफी नुकसान हुआ। सन् 1975 के अंत में लिबरेशन गुट के पास सिर्फ एक हथियारबंद दस्ता बच गया था–भोजपुर के सहार ब्लाक में और वह भी घुमंतू बन चुका था जिसे पार्टी के लिए संभालना मुश्किल हो गया था। अंत में पार्टी ने दस्ते के सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से संगठनकर्त्ता के रूप में बिखेर दिया।

इस क्रांतिकारी आंदोलन में विभिन्न जातियों से आए सदस्यों का प्रवेश व्यापक वर्गीय एकजुटता और वर्गीय समन्वय कायम करने के माध्यम से होता है। यह काम उस समाज की पृष्ठभूमि में हो रहा था तो पवित्रता और अपवित्रता, शुद्ध और अशुद्ध के आचरण को ईश्वरीय विधान मानता था। अंतरजातीय आदान–प्रदान के विविध प्रतिबंध खत्म नहीं हुए थे, लेकिन आर्थिक हित और युगों पुराना सामंती सामाजिक और लैंगिक उत्पीड़न के खात्मे के मामले में नई वर्गीय पांतबंदी हो रही थी।

दरअसल बिहार में नक्सलवादी आंदोलन के दौरान सामाजिक गतिशीलता के तीन दौर, इस प्रकार थेः

पहले दौर में प्रतिरोध आंदोलन शुरू करने के लिए प्रचार और जनता को संगठित करना शामिल रहता है। इस दौर में किसान जमींदारों, सूदखोरों और समाजविरोधी तत्वों के उत्पीड़न और शोषण की हर कार्रवाई को मानने से इंकार कर देते हैं। साथ ही साथ, वे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में समान व्यवहार की भी मांग करते हैं। इस उपयोग प्रचार से किसानों की चेतना अस्तित्वमान व्यवस्था को चुनौती देने के स्तर तक पहुंच जाती है।

दूसरा दौर : क्रांतिकारी किसान वर्ग दुश्मन के सफाए की लाइन का अनुसरण करते हुए चुनिंदा लक्ष्यों पर हमला करते हैं। वे सिर्फ दुश्मन के हमलों से अपना बचाव नहीं करते, बल्कि आक्रामक रूख भी अपनाते हैं। वे जमींदारों, और अन्य शक्तिशाली ग्रामीण शासक वर्गों और उनके एजेंटों से हथियार छीन लेते हैं। इस मोड़ पर राज्य अपनी पुलिस और मिलिट्री के बदौलत शासक वर्गों के पक्ष में हस्तक्षेप करता है। यहाँ क्रांतिकारी किसान जनता राज्यसत्ता के खिलाफ बचाव की लड़ाई लड़ती है।

तीसरा दौर : क्रांतिकारी किसान प्रतिक्रियावादी शक्तियों के खिलाफ निर्णायक हमला बोल देती है और जीत हासिल करती है। तब मुक्तांचल की व्यवस्था का संचालन क्रांतिकारी किसान कमिटि द्वारा होने लगती है।

निष्कर्ष

आजादी के बाद ग्रमीण क्षेत्रों में विकास के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए, लेकिन बिहार में सत्ता के सामंती चरित्र, जटिल नियम–कानून, भ्रष्टाचार, प्रशासनिक उपेक्षाओं, जागरूकता की कमी जैसे कारणों से विकास का लाभ कुछेक वर्गों और मुट्ठीभर लोगों तक सीमित रहा। भूमि–सुधारों को प्रभावी ढ़ंग से लागू नहीं किया गया। भूमि सुधार के तहत भूमिहीनों के बीच गैर मजरूआ जमीन और सरकारी जमीन बाँटने की योजना भी अपनी दयनीय स्थिति पर रोती ही रही। इस संदर्भ में इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि शोषित–वंचित तबकों ने अन्याय और उपेक्षा से त्रस्त होकर नक्सली विचारधारा की शरण ली और फिर शासनतंत्र के खिलाफ हथियार उठा लिया। यह भी सही है कि जहाँ कहीं भी विकास की रोशनी नहीं पहुँच सकी है वहाँ की जनता त्रस्त है, लोकतांत्रिक समाज माओवादियों के इस माँग से सहमत है कि बहुसंख्यक लोगों की जीवन स्थितियों में सुधार होना चाहिए। लेकिन खेद शोषित वंचितों के उत्थान का दावा करने वाले माओवादी संगठन ही विकास में रोड़े अटका रहे हैं यदि ऐसा नहीं होता तो सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य और ग्रामीण विकास के लिए किए जा रहे कार्यों को बाधित क्यों किया जाता? सडकों को क्यों उड़ा दिया जाता है?

सारांश के रूप में, बिहार में कृषि संबंधों से उभरते असंतोष ने वर्तमान कृषि संरचना में बदलाव के दिशा में ले जाने वाले सामाजिक आंदोलन के लिए जगह बनाई है। दूसरी और, अंतर्विरोधियों और विवादों से उभरते सामाजिक विन्यास ने संसाधनों तक पहुंच के लिए संघर्ष, वर्तमान समाज व्यवस्था के खिलाफ चुनौती, आत्म निर्णय की मांग, चुनावी जनतंत्र में भागीदारी के लिए बढ़ता संघर्ष, विकास योजनाओं पर नियंत्रण के लिए संघर्ष को नई ऊँचाई तक पहुंचा दिया।

वर्तमान समय में सर्वहारा वर्ग की क्रांति का नारा लगाने वाला नक्सलवादी आंदोलन अपने मूलभूत सिद्धांतों, उद्देश्यों व कार्यप्रणाली से दिग्भ्रमित हो चुका है। नक्सलवादी संगठनों की कार्यप्रणाली के बारे में आम जनता की अवधारणा में बहुत फर्क है। नक्सलवादी आंदोलन में पैठ चुके उट–पटांग कामों से आम जनता में बहुतेरे लोग भयभीत और आश्चर्यचकित हैं।

संदर्भ सूची :

1. अजय कुमार सिंह, नक्सलिज्म इन बिहार, विशाल पब्लिकेशन, जलांधर, 2007, पृष्ठ 23–24.
2. उपरोक्त, पृ. 25.
3. उपरोक्त, पृ. 31.
4. उपरोक्त.
5. प्रकाश लुईश, जनशक्ति : मध्य बिहार में नक्सलवादी आंदोलन, मानक, नई दिल्ली, 2008, पृ. 147.
6. जयप्रकाश नारायण, फेस टू फेस, विजन बुक्स, नई दिल्ली, 1972, पृ. 10.
7. के.के. दत्ता, बायोग्राफी ऑफ कुंवर सिंह एण्ड अमर सिंह, के.पी. जयसवाल इंस्टीच्यूट, पटना, 1957.
8. कल्याण मुखर्जी, भोजपुर : एक सोशल एण्ड इकॉनोमिक सर्वे नेशनल लेबर इंस्टीच्यूट, नई दिल्ली (अप्रकाशित)
9. कल्याण मुखर्जी, 'भोजपुर : नक्सलिज्म इन दी प्लेन्स ऑफ बिहार', पूर्वोक्त, पृ. 34.
10. एस. पाण्डेय, नक्सल वायलेंस : ए सोशियोपॉलिटिकल स्टडी, चाणक्य, दिल्ली, 1985, पृ. 23–29.